शोध-मंथन Vol. VII No. 2, 2016 ISSN No. (P) 0976-5255, (e) 2454-339X
ICRJIFR
IMPACT FACTOR
3.8942

स्त्रीवादी अवधरणा

शगुन सिक्का
सहायक अध्यापक
श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज
पंजाब

स्त्रीवादी अवधरणा

कद्ध स्त्री की निर्मिति का ऐतिहासिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

स्त्रीवाद का तात्पर्य जिसमें स्त्री के गुण विद्यमान हो इसका प्रयोग 1890 ई॰ के आसपास लैंगिक समता और स्त्रियों के अध्किार के अर्थ में किया गया। सामान्यतः यह स्त्री मुक्ति आंदोलनों से जुड़ा है। बीसवीं शताब्दी के सातवे दशक में यह विचारधरा उभरकर आई। इस विचारधरा को बढ़ाने में इस शताब्दी के पूर्वा(में जान स्टुअर्ट मिल, वर्जीनिया उल्पफ, सीमोन द बुआ आदि का महत्वपूर्ण योगदान है।[1]

पुरुष समाज में स्त्रियां सर्वदा से उपेक्षित रही है। स्वतंत्राता के अभाव में उनका व्यक्तित्व विकृत होता गया। अतः स्त्रीवाद स्त्रियों के दमन के विविध् रूपों का अध्ययन करता है और दमन से उन्हें मुक्त करने की दिशा में पहल करता है। यह स्त्री के वैयक्तिक, राजनीतिक एवं दार्शनिक समस्याओं से जुड़ा है।

शेवाल्टर स्त्रियों की रचनाओं में चार प्रकार के वैशिष्टय देखती हैं–प्राणि शास्त्रीय, भाषिक, मनोविश्लेषणात्मक और सांस्कृतिक। फ्पाम मोरिस के अनुसार स्त्री और पुरुष के बीच के ¯लगभेद का बुनियादी आधर है संरचनात्मक असमानता इसके कारण स्त्री को नियोजित सामाजिक अन्याय का सामना करना पड़ता है। दो ¯लगों के बीच की असमानता। बायोलॉजिकल जरूरत का ही परिणाम नहीं है बल्कि यह ¯लगभेद की सांस्कृतिक निख्मति है।[2]

फउत्तर संरचनावादी दौर में महिलाओं ने प्रजनन के अध्किार शिक्षा और प्रशिक्षण, औरतों को पुरुषों की तुलना में कम वेतन, कार्यक्षेत्रा में औरतों के साथ भेदभाव, छेड़खानी, घरेलू ¯हसा के खिलापफ संघर्ष के साथ तीसरी दुनिया के देशों में विकास शिक्षा स्वास्थ के सवाल भी उठाए।[3]

स्त्री उत्पीड़न, छेड़खानी, दहेजप्रथा, बालविवाह, स्त्री भ्रूण हत्या, कार्यक्षेत्रा में महिलाओं के साथ भेदभाव और वैषम्य राजनीतिक और सांस्कृतिक भेदभाव, स्त्री अस्मिता, प्रेम, पितृसत्ता, महिला के वस्तुकरण, साम्प्रदायिक व आतंकवाद की शिकार

---

1. ¯सह बच्चन, आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, पृ॰ 141
2. डॉ॰ ¯सह सुध, ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, पृ॰ 98
3. डॉ॰ चतुर्वेदी जगदीश, डॉ॰ ¯सह, सुध, कामुकता, पोर्नोग्रापफी और स्त्रीवाद, पृ॰ 23

महिलाओं की समस्या सत्तर के दशक में तेजी से केंद्र में आई है। इसके अलावा विस्थापन, मजदूरी, खेत–मजदूर औरत वेश्याओं और उनके बच्चों के भरण–पोषण और विकास के सवाल भी उठे हैं।

वैदिक युग में स्त्राी अस्मिता का स्वरूप

वैदिक युग मातृप्रधन युग था। स्त्राी पठन–पाठन, वेद की रचना करती थी। लोपामुद्रा, विशाखा, मैत्रीयी, घोषा गार्गी तथा आत्रेयी आदि विशविख्यात विदुषियां है। वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। स्त्रियों का जीवन हर प्रकार से आदर्श था। स्त्राी के जीवन का अध्किांश भाग विवाह और वैवाहिक संबंधें तक ही सीमित था। अपने पिता के घर में पलने–बढ़ने वाली लड़की को गांव के युवकों से मिलने जुलने में कोई वाध नहीं थी। स्त्रियों के लिए शिक्षा वख्रजत नहीं थी लेकिन उनके लिए विध्वित शिक्षा का कोई विधन नहीं था। आश्रमों में भी वह नहीं रहती थी। विवाह के बाद पढ़ाई करनेवाली छात्राा को संद्योवधू तथा विवाह के बाद, ज्ञानार्जन करनेवाली स्त्राी को ब्रह्मवादिनी कहा जाता था।

पिता के न रहने पर पुत्राी के भरण पोषण का दायित्व पुत्रा का था। विवाहित और अविवाहित दोनों ही स्थितियों में स्त्रियाँ पैतृक अध्किार से वंचित थी। स्त्राी के विध्वा हो जाने पर सम्पत्ति का उत्तराध्किार प्राप्त करनेवाले का यह दायित्व होता था कि वह विध्वा का भरण–पोषण करे। विध्वा को विवाह की अनुमति संतान प्राप्ति के लिए थी जिसे 'नियोग' नाम से जाना जाता है। देवर के साथ विवाह का उल्लेख है। प्रथम पति के मृत्यु के बाद विध्वा की स्वीकृति है। अथर्ववेद में ऐसे संकेत ढूंढे जा सकते हैं जहाँ पति के मृत्यु के बाद पत्नी स्वयं अग्नि में जल जाती थी या संबंधि लोग उसे जला देते थे।

बहुपत्नित्व व बहुपातित्व प्रथा थी। कुमारी पुत्रा का उल्लेख है। वेश्या व गर्भपात करनेवाली स्त्राी का उल्लेख है। महाकाव्य काल में वेश्याएं समाज और परिवार में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर चुकी थी। कभी–कभी सेनाओं के साथ भी वेश्या चलती थीं।

वैदिक युग में स्त्राी यज्ञ कार्य में भाग लेती थी। पुत्रा न होने पर पिता की संपत्ति की अध्किारिणी पुत्राी को ही माना जाता था। पति द्वारा पत्नी को भेट दिये जाने का उल्लेख भी मिलता है। इस युग में स्त्राी मानवीय रूप में चित्रिात थी। वह गरिमामय ढंग से जीवनयापन करती थी। दरअसल यह मातृप्रधन समाज था। मातृत्व को दैविक शक्ति माना जाता था। संतान को पिता के वंश या कुल से नहीं वरन माता के नाम से जाना जाता था। उपनिषदों में वख्रणत स्त्राी भी एक ऐसी संपूर्ण मानवीय इयत्ता है जो पुरुष से शारीरिक भिÂता लिये असीम संभावनाओं का वैसा ही पूंजीभूत रूप है जो अपने आंतरिकता, वैयक्तिकता, और स्वतंत्राता द्वारा जीवन के उच्चतम सोपानों को स्पर्श कर सकती है।

आख्रथक–सामाजिकता वर्गीकरण में स्त्राी का अस्तित्व क्रमशः पेचीदागियों के घेरे में उलझता गया। धीरे–धीरे समाज का स्वरूप पितृसत्तात्मक हो गया। अतः स्त्राी अस्मिताहीन दुर्बल व शोषित बनकर रह गयी।

मनुष्य जब जंगलों या पहाड़ों की गुपफाओं में रहता था तो शिकार कर जीवन यापन करता। स्त्राी–पुरुष दोनों साथ–साथ स्वतंत्रा जीवन जीते थे। ¯कतु जैसे–जैसे जैविक स्थितियों की भिÂता ने पुरुष के शारीरिक बल के अध्किता और नारी के मातृत्व भाव को प्रमाणित किया, वैसे–वैसे नारी का परावलंबन भी बढ़ने लगा। कार्यक्षमता का बंटवारा हुआ। स्त्रियां गर्भस्थ शिशु का देखभाल के लिए घर पर रहने लगी और पुरुष अपनी संतति की रक्षा हेतु अध्कि सावधन और कर्मठ हुआ। ज्ञान और गतिविध्यिों के विस्तार के साथ–साथ जैविक सीमाओं से भी मुक्त पुरुष स्त्राी का स्वामी और घर का मालिक बना। पुत्रा सत्यकाम और मात जाबाला की कथा इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। जिसमें पिता का आज्ञा में रहना उसकी शिक्षा–दिक्षा में बाध्क नहीं बनता।

पितृसत्ता और स्त्राी

मनुस्मृति में स्त्राी जाति पर अंकुश लगा दिए। वह एक जीवित प्राणी के बदले एक पराधेन भोग की वस्तु बनकर रह गई। इनके अनुसार स्त्राी कभी स्वतंत्राता के योग्य नहीं होती। कुमारी अवस्था में स्त्राी की रक्षा पिता करें, जवानी में पति और बुढ़ापे में पुत्रा।

रक्षाति पिता कौमारे, भ्राता रक्षति यौवने
रक्षाति स्थविरे पुत्राा, न स्त्राी स्वातंत्रयमहख्रत

स्त्राी का कर्त्तव्य पुरुष की अनुगामिनी बनना भर है। पति सेवा ही उसका संस्कार है। स्त्राी पराधेनता को सीध उत्तरदायी ठहराते हुए राजकिशोर लिखते हैं।

फजहाँ मनुस्मृति श्लोकों की प्रतिध्वनि नहीं पहुँची थी वे क्षेत्रा भी स्त्राी और पुरुष दोनों के लिए न्यूनतम वर्जनाग्रसी रहे हैं।[1]

इस युग में रचे अन्य ग्रंथों में भी स्त्राी को रहस्यमयी घोषित कर अध्किार, मद, लालसा से उस पर कठोर नियंत्राण की मांग होने लगी।

बौ(ध्र्म में रूढ़िवादिता और कर्मकांड का निषेध् किया है। इस ध्र्म ने स्त्राी शिक्षा और पुनख्ववाह को बढ़ावा दिया। संघ में स्त्रियों को भी भिक्खुनियों के रूप में प्रवेश योग्य माना। ध्र्म की वर्गों के चुंगल से छुड़ाकर सभी के लिए मध्यम मार्ग की परिकल्पना की। विदेशी आक्रमणों के भय से एक बार पुनः सामाजिक अवस्था में परिर्वतन की मांग को बल मिला। शांति व सुरक्षा की दृष्टि से स्त्राी स्वतंत्राता पर रोक लगा दी गयी। पर्दा प्रथा और सती प्रथा अनिवार्य हो गयी। सती होने की स्थिति में विध्वा स्त्राी के साथ ऐसे दुर्व्यवहार होते थे कि वह सती होकर मर जाना ही बेहतर समझती थी। गृहस्थ जीवन में पतिव्रता स्त्राी को एक आदर्श रूप में चित्राण किया गया। भगवद् भक्ति के बदले पति भक्ति से ही मोक्ष प्राप्त हो सकेगा–ऐसी धरणाओं की मान्यता प्रदान की गई।

मध्यकाल में भक्ति आंदोलन और स्त्राी अस्मिता का स्वरूप

मध्यकाल का भवित आंदोलन जनांदोलन था। जिसने परंपरा और संस्कृति दोनों के साथ लिये भारतीय समाज की तत्कालीन व्यवस्था, रूढ़ियों के सापफ चित्राण के साथ ही उन बंध्नों को तोड़ पफेकने की निद्वन्द्व निर्भयता भी लिए हुए था। निम्न वर्ग में जन्में भक्ति आचार्यों ने ध्र्म को वर्ण और वर्गभेद की जकड़ से मुक्त कराया। स्त्रियां कीर्तन और सत्संग करने लगी। इसके बहाने घर से बाहर निकली। जन–भाषा में रचे भक्ति गीतों के प्रचलन से अनेक महिला संतों की रचनात्मकता सामने आयी और आत्माभिव्यक्ति का साध्न बनीं। इनमें आन्दाल भक्तियों के अतिरिक्त मीराबाई, जनाबाई, दयाबाई, आदि प्रमुख हैं। इनकी कविताओं में यातनाओं की अभिव्यक्ति के साथ–साथ अपनी स्वतंत्राता की मांग का मुखर स्वर भी मिलता है। इन लागों ने निर्भयता से संकल्प लियाः–फ्भजन करस्यां सती न होस्यां।य

मीरा ने एक लंबे समय तक यातना सही। विरोधी शक्तियों के खूंखार स्वभाव की पहचान कर उन्होंने भक्तिरूपी प्रेम का प्रबल प्राप्त किया और अपने संघर्ष के लिए संकल्प जुटाकर विरोधी को चुनौती देती प्रतीत होती है।

आधुनिकीकरण और समाज सुधर संघर्ष में स्त्राी अस्मिता

भारतेंदु हरिश्चन्द्र की यह आकांक्षा थी कि 'नारी नर सम होह जग आनन्द है।य फजो बातें तुम्हारे उÂातिपत में कांटा हो उनको जड़ से खोदकर पफेंक दो कुछ मत डरो।र[1] ने एक नई विचारधरा को अभूतपूर्व तेज के साथ सामने रखा। इसके बाद विभिÂ सांस्कृतिक और ध्खमक सुधरवादी आंदोलन ने जोर पकड़ा तथा स्त्रियों पर लादी गई कुप्रथाओं और हिन्दुओं में जाति–भेद पर तीखे सवाल उठाये। इसकी सीध असर तत्कालीन समाज पर पड़ा।

ब्रह्मसमाज ;1828, राजा राममोहन रायद्ध, प्रार्थना समाज ;1868, केशवचंद्र सेनद्ध, आर्यसमाज ;1833, स्वामी दयानंद सरस्वतीद्ध थियोसापिफकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन ;1897, विवेकानंदद्ध, सत्यशोध्क समाज ;1873, ज्योतिबा पफुलेद्ध, शारदा सदन ;1889, रमाबाईद्ध, वीमेन्स इंडिया असोसिएशन ;1917, लेडी सदाशिव अÕयरद्ध आदि ने भारतीय स्त्रियों पर रूढ़ियों और कुप्रथाओं के माध्यम से किये जा रहे अन्याय, अत्याचार का विरोध् किया और उन्हें पुरुषों के समकक्ष माने जाने पर बल दिया।

मानवतावादी तथा समानतावादी विचारों से प्रेरित इन समाज सुधरकों ने स्त्रियों की दशा सुधरने के लिए जो सपफल आंदोलन छोड़े उनमें व्यक्तिवाद तथा समानता के सि(ातों के साथ–साथ ध्र्म की एक नई व्याख्या भी थी।

फ्लोकलाज कुल कानि जगत की, दह बहाय जस पानी।
अपने घर का परदा करले, मैं अबला बौरानी।।

इस पद की अंतिम पंक्ति को स्त्राी अस्मिता की महत्वपूर्ण उद्घोषणा ठहराते हुए मैनेजर पांडेय कहते हैंः–

---

[1]. *राज किशोर, स्त्राी पुरुष कुछ पुनर्विचार, पृ. 28*
[1]य *भातेंदु हरिश्चंद्र, भारतेंदु समग्र, पैरा–2, पृ. 1012*

अपने घर का परदा कल ले, मैं अबला–बौरानीय में आरंभ में व्यंगवाद की विडंबना से मिलकर जो प्रभाव पैदा करता है, चुनौती को वह अध्कि अर्थपूर्ण और धरदार बना देता है। यहाँ एक सजग स्त्राी स्वर सुनाई देता है जिसमें आक्रोश की अनुगूंज है किसी पीड़ित की चीख पुकार नहीं।य[1]

इसक साथ ही वह कहते हैं कि फइससे यह भी स्पष्ट है कि संकल्प और आस्था के साथ अपनी अस्मिता और स्वतंत्राता के लिए संघर्षशील अबला भी पुरुष के लिए चुनौती बन सकती है।य

महात्मा गाँधी का आगमन और स्वाधीनता संग्राम में स्त्राी अस्मितता का स्वरूप

गाँधी जी स्त्राी समानता की बात करते हैं। स्वाधीनता संग्राम के दौरान महात्मा गाँधी के आह्वान पर लाखों परिवारों से लज्जालु और परंपरा के अंध्रों से ग्रस्त स्त्रियाँ, सड़कों पर उतर आयी और वंग–भंग विरोधि आंदोलन से लेकर होमरूल आंदोलन तक में बड़ी संख्या में भाग लिया। 1918 के बाद वे राजनीतिक जुलुसों के साथ चलने लगी। असहयोग आंदोलन में वे जेल भी गई तथा जन प्रदर्शनों को न केवल संबोध्ति करने का साहस जुटाया बल्कि आगे बढ़कर लाठी, आंसू गैस और गोलियां भी झेलीं। भारतीय स्त्राी की इस कर्मठता और क्षमता से न केवल संपूर्ण विश्व चकित हुआ वरन् स्वयं स्त्रियां भी अपने इस नए रूप से जागृत होकर अपनी पराधीनता के करणों को विश्लेषित करने की दृष्टि पा सकीं।

गाँधीजी के पहल के कारण ही हमारे देश में अन्य समृ(तम देशों के मुकाबले स्त्रियों को कापफी पहले ही मत देने का अध्किार प्राप्त हो गया था। सरोजनी नायडु को राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया। अनेक स्त्रियाँ 1937 में मंत्राी या संसदीय सचिव बनीं।

नगरपालिकाओं, स्थानीय शासन संस्थाओं के साथ ट्रेड यूनियन तथा किसान आंदोलन ;1920 ईú्द्ध में भी स्त्रियाँ अग्रिम पंक्ति में खड़ी दिखायी देने लगीं।

इस प्रकार महात्वा गाँधी की प्रेरणा और स्वाधीनता संग्राम की विस्पफोटक शक्ति ने भारतीय स्त्रियों की जागृति तथा मुक्ति में सर्वाध्कि महत्वपूर्ण योगदान दिया। महात्मा गाँधी ने कहा था फजब भारत की आजादी का इतिहास लिख जायेगा तो उसमें भारतीय नारी का प्रमुख हिस्सा स्वर्णक्षरों में अंकित किया जायेगा।य इस प्रकार स्त्राी अस्मिता के स्वरूप को दृढ़ता प्रदान करने में महात्मा गांधि का योगदान अविस्मरणीय है।

भारतीय समाज में पुरुष और स्त्राी की अवधरणाओं में प्रर्याप्त अंतर माना जाता है। पुरुष की अवधराणा जहाँ केन्द्रीय और सकारात्मक होती है वहीं स्त्रीात्व की मूल अवधरणा नकारात्मक है। पुरुष समाज की तलाश के लिए स्वतंत्रा हो सकता है जबकि स्त्राी को मानवी रूप में पैदा होने के बावजूद तरह–तरह के सामाजिक बंध्नों को निभाने के बावजूद अपने स्व के सतत विस्मृत कर माँ, बहन, भावी पत्नी वह पुत्राी रूप में ही मर जाना होता है। उसे इसके लिए स्त्रीात्व की एक विशिष्ट तालीम देकर स्त्राी बनाया जाता है। इसके लिए एक खास ढंग का उठना बैठना, बोलना, हंसना, भोजन करना, कपड़े पहनना, बाल बनाना, सजना आदि क्रियाएं सम्मिलित है। उसकी शारीरिक संरचना की विभिÂता के कारण उसे अनेक अमूर्त, अपूर्ण और परस्पर विरोधि परिभाषाओं में जकड़कर मानवीय गरिमा से च्युत कर दिया जाता है। ये आधर केवल जैविक नहीं है बल्कि सांस्कृतिक भी है।

जैविक आधर

मनुष्य जाति में यौन–प्रक्रिया या प्रजनन एक विशिष्ट और मूल्य–प्रक्षेपण की क्रिया मानी गयी है। जिसमें पुरुष और स्त्राी के शरीर की बनावट, गर्भधरण की संपूर्ण प्रक्रिया, घर और बाहर के कार्यक्षेत्रा आदि समाज व्यवस्था के आधर–तत्व हैं।

पुरुष शरीर की बनावट अध्कि बल, स्पफूखत, अंगों के चौड़ेपन और प्रमुखतः वाह्य रूप लिए होता है तो स्त्राी शरीर किशोरावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था ;मोनोपॉज तक का समयद्ध तक ऐसी प्रक्रिया में बंटा है जिसमें विकास के साथ–साथ आए परिवर्तन उसे अध्किाध्कि संकोची बनाते जाते हैं। प्रति महीने मासिक स्त्राव के झमेले के साथ नौ महीने तक गर्भधरण करने की शारीरिक स्थिति उसे नितांत भिÂ अनुभव तो देता ही है–उसके शरीर के सुकोमल, लचीला, मुलायम और स्निग्ध बनाने के साथ–साथ दुग्ध ग्रंथियों को भी सक्रिय करती है। इन सब प्रतिक्रियाओं से गुजरने हुए वह अक्सर अपने पहने गए कपड़ों के प्रति भी संशकित और सशक्त बनी रहती हैं। जनानांगों और गर्भाशय की स्थिति उसे पुरुष की भाँति, स्वतंत्रा, स्वच्छानंद और मुक्त शैली अपनाने से रोकती है तथा उस पर लादे गए सामाजिक रीति–रिवाजों में उसके शरीर को पाप का घट बनानेवाली परिभाषाएं स्वयं उसे हीनतर बनाती जाती है।

---

1. पांडे, मैनेजर, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृ. 41

ऐसे में पुरुष के भांति आचरण कर मुक्त होने की परिकल्पना उसे न केवल असपफलता की राह पर ले जाती है, बल्कि अपने प्रति अन्याय के रास्ते पर भी ले जाएगी। उसे हमेशा समानता और असमानता का अंतर पहचानकर आगे बढ़ना होगा जैसा कि महादेवी वर्मा कहती है।

फ्दो वस्तुओं का अंतर सदैव उनकी श्रेष्ठता और हीनता का द्योतक नहीं होता, यह मनुष्य प्रायः भूल जाता है नारी ने भी यही चिर परिचित भ्रांति अपनाई। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, शारीरिक विकास के विचार से और सामाजिक जीवन की व्यवस्था से स्त्राी में विशेष अंतर रहा है और भविष्य में भी रहेगा, परंतु यह मानसकि और शारीरिक भेद न किसी की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है और न किसी की हीनता का विज्ञापन करता है।[1]य

अतः जन्मजात जैव लाक्षाणिकता ऐसी निर्णायक शक्ति नहीं है जिसके तहत किसी एक वर्ग को हीन ठहराया जाये। सामाजिक वातावरण और संस्कार मूल्य ही वे प्रधन कारक तत्व हैं जिनमें किसी स्त्राी का पालन पोषण होता है। वह वातावरण ही स्त्राी सुलभ विशिष्ट वृत्तियों को प्रेरित करता है। उसके लिए स्त्रियों की जैविक विशेषता लेशमात्रा उत्तरदायी नहीं है।

मनोवैज्ञानिक आधर

मनोविज्ञान में शरीर संरचना को अस्तित्व की नियति माना गया है। मनो विश्लेषकों के अनुसार, व्यक्ति की प्रवृत्ति और झुकाव अलगाव की ओर होती है। पुरुष और स्त्राी के जननांगो में प्रर्याप्त भिÂता है। इस भिÂता के कारण अपने–अपने 'स्व' को बाहर की दुनिया से जोड़ने का उपक्रम करता है। जबकि स्त्राी का सुरंगीय शरीर और उसके सामाजिक परिवर्तन स्वयं उसके लिए उलझन स्वरूप होने लगते हैं। इससे उसका 'एल्टर इगो' न तो कभी बोझिलताओं से मुक्त हो पाता है और न ही कभी उसमें सृजन का अभिमान जाग पाता है। इस प्रकार, धीरे–धीरे उसका सम्पूर्ण अस्तित्व एक वस्तु रूप ग्रहण कर लेता है और सचेत रूप से सेक्सुअल जीवन के रूप में विकसित नहीं होने देता इसके कई मनोवैज्ञानिक परिणाम होते हैं।

चूँकि पुरुष अपनी इस संरचना में अध्कि महत्वपूर्ण हो जाता है और यह महत्व समाज और व्यवस्था द्वारा अनुकूलित भी कर दिया जाता है। अतः पुरुष, सत्ता एवं ताकत का परिचायक हो जाता है। ञयड ने इस बात को स्वीकार किया है कि ¯लग की आराध्ना वास्तव में पितृ–सत्ता का प्रतीक है।

ञयड ने स्त्राी व पुरुष में मानसिक भिÂता बनायी इसमें उन्होंने कहा स्त्रियां घरेलू काम में अध्कि रमती है। भावना, स्नेह अभिव्यक्ति में अध्कि रमती है। महादेवी ने कहा कि स्त्राी को त्याग व सहनशीलता आदि गुण मातृत्व की पूख्रत के लिए प्रकृति से मिले हैं।

फ्जब दो मानव एक साथ रहते हैं तो एक सत्ता दूसरी सत्ता पर अपना प्रभुत्व स्थापित करती है। अगर दोनों प्रभाव से मुक्त रहें तो एक स्नेहपूर्ण संबंध् स्थापित हो जाते हैं। भौतिक व सामाजिक सत्ता पुरुष के हाथ में रहती है अतः स्त्राी अस्मिता का मनोवैज्ञानिक आधर कमजोर होने लगता है। इस प्रकार वह स्वयं अपनी अस्मिता बनाने के बजाय वह किसी की पुत्राी, किसी की पत्नी, किसी की बहन या मां के रूप में जानी जाती है।य[1]

अध्कितर सभी प्रकार के इतिहास, दर्शन, साहित्य, राजनीतिक विमर्श पुरुषों द्वारा ही लिखे गये हैं। पुरुष ने स्त्राी को सिपर्फ शरीर, भोग्या, मनोरंजन, वस्तु ही माना। रीतिकाल, आदिकाल का अध्किांश साहित्य स्त्राी को मनोरंजन व भोग्या मानकर ही लिखा गया। कुछ थोड़ी सी महिला इतिहास के पृष्ठों पर मिल भी जाती है तो उसके कारणों का विश्लेषण करते हुए रोमिला थापर कहती है।

फ्मीराबाई और रजिया जैसी उच्च कुल की नारियों को अपनी प्रतिभा का उपयोग करने की अध्कि स्वतंत्राता प्राप्त थीं परंतु मीराबाई जोगन बनकर और रजिया पुरुष शासकों का रूप ध्रकर ही ऐसा कर सकती थी।य[2]

रानी हजरत महल और रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजी शासन के खिलापफ विद्रोह किया। उत्तराध्किारी की मांग को अंग्रेजों ने जब अस्वीकार कर दिया तो रानी अपने स्वाभिमान के रक्षा के लिए अंग्रेजों से लड़ी और अंत में वीरगति को प्राप्त हुई।

गाँधीजी के आदेशपर स्त्रियाँ स्वतंत्राता आंदोलन में कूद पड़ी। उन्होंने सर्वस्व योगदान दिया। चरखा काटना, खादी बनाना, विदेशी कपड़ों को होली जलाना, आम सभाएं आयोजित करना और पुरुषों के साथ रहकर अपने अध्किार के लिए लड़ाई लड़ना आदि कार्य स्त्रियों ने सपफलतापूर्वक किया।

---

1. वर्मा महादेवी, श्रृंखला की कडियां, पृ. 43

[1]. थापर रोमिला, भारत का इतिहास, पृ. 228

[2]. सिंह रूपा, स्त्राी अस्मिता और कृष्णा सोबती, पृ. 26

सामाजिक आधर

सांस्कृतिक अचार संहिता के सारे नियम समाज स्त्राी पर थोपता है। उसे अपने पिता के यहाँ एक वस्तु की तरह संभाला जाता है। उसकी कामुकता पर नियंत्राण स्थापित किया जाता है। घर में रात को कितने बजे वापस आना है, किस प्रकार के कपड़े पहनने है, किससे दोस्ती करनी है यह सब पिता, भाई तय करते हैं। वह शादी के बाद अपने पति के घर चली जाती है। पति के घर उसे सहनशील, लज्जाशील, परिवार की गरिमा के अनुकूल आचरण करना पड़ता है। उसे सास–ससुर, पति–देवर–ननद सभी का ध्यान रखना है। दहेज के नाम पर उसका शोषण किया जाता है। उसे जला दिया जाता है। सास–ससुर–पति द्वारा मारा जाता है, उसे वेश्या बनने को विवश कर दिया जाता है।

समाज विध्वा स्त्राी का जीवन दुभर कर देता है। उसे पुनख्ववाह करने में भी अनेक संकटों का सामना करना पड़ता है। स्त्राी अगर सुंदर, सेक्सी, शालीन न हो तो उसे उसके रंग के आधर पर भेदभाव किया जाता है। सास व ननद पुत्रा वधु को छलती है। अगर वह बांझ है तो उसका जीवन नरकीय बन जाता है। पति अगर माँ व बहन की बात सुननेवाला हो तो वह भी पत्नी को सताने में कोई कसर नहीं छोड़ता। बेटी के जन्म पर स्त्रियाँ नाराज और पुत्रा के जन्म पर खुश होती है।

शाहबानो सुप्रीम कोर्ट का मुकदमा जीत जाती है लेकिन अपने समाज की आचार संहिता परंपरा रूढ़ी का सामना वह नहीं कर पाती। पिता, भाई व पति काला ध्न छुपाने के लिए माँ, बहन व पत्नी के नाम सम्पत्ति खरीदते हैं। बहन अगर, संपत्ति में हिस्सा मांगती है तो उसकी शादी करा दी जाती है। बलात्कार से पीडित महिला को पुरुष वकील ऐसे सवाल पुछते हैं जो इन सवालों का जवाब स्त्राी दे नहीं पाती परिणामतः आरोपी छूट जाता है। इस तरह स्त्राी को कानून में न्याय होने के बावजूद कहीं न्याय नहीं मिल पाता। पुत्रा की लालसा के खातिर पेट में ही उसकी हत्या कर दी जाती है।

गाँव की गरीब ग्रामीण महिलायें खेती, पशुपालन, डेयरी, हथकरघा, स्वेटर बनाने आचार–पापड़ बेलने, रास्ता बनाने, आदि कार्यों से जुड़कर अपना पेट पाल रही है। जवाहर रोजगार योजना, समेकित ग्रामीण विकास योजना के आध्े अधूरे अनुदानों पर पारंपरिक हुनरों से बेदखल होने का डर हमेशा बना रहता है। गाँव की महिलाएं अशिक्षित होने के कारण सरकारी योजनाओं का लाभ उन तक नहीं पहुँचता। झोपड़पट्टी की स्त्रियों को कम मजदूरी पे काम करना पड़ता हैं। उसे प्रसुति सविध का लाभ नहीं मिलता। काम की जगह अगर कोई हादसा हो जाय तो कानूनी मदद नहीं मिलती। अगर कभी मंदी के कारण छटनी हो भी जाती है तो छंटनी की पहली मार महिलाओं को ही झेलनी पड़ती है। उच्च शिक्षित स्त्राी अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में अपनी भागीदारी दर्ज–कर रही है जैसी इंदिरा नुई, चंदा खोचकर, कीदवई, किरण मजुमदार आदि स्त्रियाँ बिजनेस क्षेत्रा में सपफल है लेकिन इनकी मात्राा न के बराबर है।

स्त्राी की स्वतंत्रा पहचान के रूप में मान्यता देने से पुरुष व समाज ने उसका हमेशा विरोध् किया। वह देवी, दानवी, पत्नी, मां, पुत्री, बहन के रूप में उसकी पहचान निश्चित की। उसकी अस्मिता को पुरुष पर निर्भर बना दिया। हर समस्या को प्यार से सहने के लिए मानसिक रूप से विवश किया। शादी होने के बाद पिता के घर उसके सारे अध्किार समाप्त हो जाते हैं। कन्यादान होने के बाद पिता गंगा नहाने सा सुख तथा पुण्य प्राप्त करता है। वह पिता के घर आती भी है तो एक मेहमान बनकर। अÂ, वस्त्रा व छत के खातिर उसे तन–मन की सेवा देनी पड़ती है।

ज्योतिबा पफुले ने नारी उ(ार के लिए रचनात्मक कार्य किया। उन्होंने सावित्राी बाई पफुले को पढ़ाया। सावित्राीबाई भारत की सर्वप्रथम स्त्राी अध्यापिका बनी। रमाबाई रानाडे ने आजीवन महिला शिक्षा हेतु संघर्ष किया। केशवचंद्र सेन द्वारा स्थापित आर्यनारी समाज ;1879द्ध ईµ में हिन्दू महिलाओं की पुरानन काल के स्वर्ण युग की ओर आकख्षत करने का प्रयास किया। उन्होंने 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की। देवेन्द्र ठाकुर ने महिला शिक्षा, बाल विवाह व विध्वा पुनख्ववाह जैसे प्रश्नों पर काम करने के लिए 'समाजोÂति विधयिनी सु(य' नामक पुस्तक लिखी।

ांस में 1945 ईµ में महिलाओं को मतदान का अध्किार मिला। 1917 ईµ में मद्रास में 'भारतीय महिला असोसिएशन' का उद्घाटन हुआ। इसकी संस्थापिका एनी बेंसेट थी। सरोजनी नायडू ने महिला शिक्षा व महिला मताध्किार का मांग उठाई। राजकुमारी अमृतकौर 1930 के नमक सत्याग्रह में सक्रिय हुई और मुम्बई में गिरफ्तार होकर जेल चली गयी। हिन्दी भाषी क्षेत्रा में स्त्रियों की दशा सुधरने के लिए आवाज उठानेवाली पहली पत्रिाका 1874 में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रकाशित बालबोध्नी थी।

सरस्स्वती, प्रभा, अभ्युदय, मर्यादा, सुध और माधुरी आदि पत्रिकाओं ने नारी समस्याओं को उठाया। इन लेखों में परदा प्रथा, बाल विवाह, विध्वा विवाह पत्नी की मृत्यु होने पर पुरुषों द्वारा बार–बार विवाह स्त्री शिक्षा व स्त्रियों के राजनीतिक अध्किार आदि समस्याओं को उठाया।

आज आधुनिक स्त्री से यह अपेक्षा की जाती है कि वह निजी दुःखों का पिटारा लेकर न बैठे, वह इतनी पढ़ी लिखी हो कि ड्राइंगरूम की चर्चा में भाग ले सके। वह किसी न किसी परम पुरुष की छाया में ही रहे। फ्छायावादी नवजागरण में देवी माँ, सहचरी, प्राण का ढांचा था। अब डिजिटल एज का युग है। 33 पफीसदी आरक्षण का मुद्दा है। आज स्त्रियाँ स्वतंत्राता की खतरनाक सीमाएं पार करने लगी है। आप किसी को दुश्चरिता नहीं कह सकते। कहते हैं तो अपराध् पागलपन, पिछड़ापन है। पति को छोड़कर प्रेमी के साथ सोना विश्वासघात पाप या अपराध् नहीं है, जीवन जीने की स्वतंत्राता है। यह नश्वर देह का सार्थक उपयोग है।...महादेवी के समय, समाज में नारी प्रेरणा, शक्ति, प्रकृति, पवित्राता, आत्मा और अर्चना का पर्याय थी। आज उत्तर आधुनिक समय में नारी मात्रा देह, सेक्स, वस्तु, प्रदर्शन और बाजार बनकर रह गई है।य[1]

आज स्त्री को श्र(ा, शक्ति, प्रकृति, पवित्राता, आत्मा और अर्चना तक सीमित रहना स्वीकार्य नहीं है। देवी, मां, सहचरी, प्राण के इतर एक इंसान भी है। वह यह मान्यता चाहती है। स्त्री का जितना नैतिक विकास व बौ(िक विकास पिछले तीन दशक में हुआ है, उतना पुरुषों का नहीं हुआ। पहले स्त्रियाँ तन–मन से घर में एक–एक व्यक्ति की सेवा करती थी। घर उनके लिए रक्त और यौन संबंधें के घेरे तक सीमित नहीं है इसमें परिजन, पुरजन, दुनिया के सारे वंचितजन शामिल हैं।

आर्थिक आधर

स्त्री स्वतंत्राता के लिए सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक आधर है। यह एक ऐसा पहलू है। जो न केवल पेट की भूख से जुड़ा है। बल्कि इज्जत और सम्मान की धुरी भी इसी आधर पर टिकी है। आज जबकि तमाम राष्ट्रीय और आंर्तराष्ट्रीय स्तरों पर यह स्वीकार कर लिया गया है। कि स्त्रियों के काम से राष्ट्रीय उत्पादन में दुगुनी वृ(ि हो सकती है। पिफर भी यह सापफ दिखने में आता है कि गांव की गरीब स्त्रियां जो डेयरीपालन हथकरघा या अन्य कृषि प्रधन कार्यो से जुड़कर पैसे कमा रही है। आयातित कृषि तथा खाद्य प्रसंस्करण सामग्री पर आयात शुक्ल के कारण अपने आनुषंगिक कार्यों से वंचित कर दी गई है।

जवाहर रोजगार योजना, समेकित ग्रामीण विकास योजना के आध् – अधूरे अनुदानों पर पारंपारिक हुनरों से बेदखल हो स्थानीय संस्कृति से भी बेदखल किए जाने का भय सदैव उन्हें घेरे रहता है।

अन्तराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा उत्पादित आधुनिकतम उत्पाद्य को डिब्बाबंद कार्य की दिहाड़ी से जुड़ी झोपड़पट्टी की स्त्रियों को आए दिन मजदूरी नहीं मिलती है। प्रसुति सुविध का अभाव, अवकाश वेतन की असुविध के साथ चोट–चपेट लगने पर कानूनी मदद भी नहीं मिलती है। छटनी भी सबसे पहले महिला मजदूरों की ही होती है।

आज आर्थिक उदारीकरण नीति के तहत सार्वजनिक क्षेत्राों में बीमार इकाइयां बंद करने तथा रोजगार घटाने का दबाव पढ़ता जा रहा है। निजी कंम्पनियां खूब पढ़े लिखे और दिखने में स्मार्ट युवकों को अवसर दे रही है। उच्चतम शिक्षा प्राप्त स्त्री भी अन्तराष्ट्रिय अर्थव्यवस्था का हिस्सा बन रही है। पर उनकी संख्या का न्यूनतम् प्रतिशत और कार्य वितरण प्रणाली को देख कर नहीं लगता है। कि वे सभी प्रकार के शोषण दुष्चक्र से पूर्णतः मुक्त है।

भारतीय सामाज के रूपरेखा न केवल पुरुष प्रदान रही बल्कि वहाँ स्त्री को मानवीय मनुष्य समझने से ही इन्कार दिया गया। उसकी अनेक परिभाषा बना दी गई जिसमें कभी तो वह देवी बनी, कभी दानवी, कभी पत्नी, कभी मां, कभी पुत्री। उसके समग्र व्यक्तित्व को पुरुष निर्भर संबंधें में बांट दिया।

फ्लगभग सभी धर्मिक और दार्शनिक दायरों में स्त्री को पुरुष के संदर्भ में एक अपूर्ण और सापेक्ष जीवन के रूप में ही देखा गया है। वरना यह न माना जाता कि मात्रा स्त्री होकर जन्म लेना सही सामाजिक संदर्भ में सार्थकता से स्त्री होने के लिए प्रयप्ति नहीं और हर स्त्री के लिए स्त्री स्त्रीत्व यानी खास तरह से उठने बैठने, बोलने चलने की विशिष्ट तालीभ भी नेते चलना जरूरी न काह जाता है।य[1]

स्त्री सामाजिक प्राणी होते हुए भी गृहविहीना ऐसा जीव है। जिसका घर तो क्या रातों रात नाम भी बदल दिया जाता है। बचपन से युवा उसका तन न केवल अजनबी पति को सौंप दिया जाता है। वरन् एक नये वातावरण, परिवार, संबंधे के बीच जानवर की तरह चुप रहकर काम करने और सब कुछ प्यार से सहने को मानसिक रूप से विवश किया जाता है।

---

[1]प *अनामिका, हिन्दी दैनिक जनसत्ता, दिल्ली संस्करण, 27 सितम्बर 2009, पृ. 25*
[1]प *मृणाल पाण्डे, स्त्रीः देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, पृ. 5*

कन्या का यह हस्तांतरण पिता के लिए ऐसा धर्मपूर्ण 'कन्यादान' कहलाता है। जिसके बाद उसकी चिंता करने के बजाय वह 'गंगा नहाने सा सुख तथा पुण्य प्राप्त करता है। मायके से ससुराल विदा होते ही कन्या के सारे अधिकार मायके से समाप्त हो जाते हैं। वह कभी–कभी आकस्मित महमान के तौर पर ही अब उस घर में आ जा सकती है। जहां उसने उम्र का एक लंबा सपफर तय किया है। यहा नहीं, किसी कारणवश यदि ससुराल वाले उसे ताड़ना देकर घर से बाहर निकाल दें तो वह वापस अपने घर नहीं जा सकती। इस प्रकार न मायका अपना और न ही ससुराल ही उसका ही पाता है। एक गुलाम बांदी की तरह भरपेट भोजन एक छत, चंद कपड़ों का खातिर अपने तन मन की सेवा उसे देसरों को देनी पड़ती है। यह भाव उसमें एक हीनता तथा असुरक्षा की भावना पैदा करना है। इसकी प्रामणिक जांच करते हुए मधुकिश्वर लिखती हैं।

जीपे संबा वि इेंपब तपहीज पद इवजी ीमत दंजनतम ंदक उंतपजंस ीवउम बवदजतपइनज मदवतउवनील जव उांपदह ं ूवउंद मगचमतपमदबम चमतचमजनंस पदेमबनतपजल मेचमबपंससलपद जीवेम बवउउनदपजपमे ूीमतम ं ूवउंद पे ामचज तिवउ वूदपदह चतवचमतजल पद ीमत वूद दंउमण्

यदि समाज में कोई स्त्री विध्वा हो जाये तो समाज उसके साथ बहुत बुरा बर्ताव करता है। उसे मनपसंद कपड़े पहनने या आभूषणों की आज्ञा नहीं दी जाती। यदि वह दुबारा विवाह करना चाहे तो 'कुलटा' कहकर उसका सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता है।

हमारे समाज में हालांकि मातृत्व का गौरव–गान किया गया है। लेकिन गौर से देखने पर यह भी ऐसा आलंकारिक आदर्श लगता हैं जिसमें उसे षढ़यंत्रा की बू आती है। जिससे स्त्राी को अधिकाधिक बंध्नों में बांध जा सके। एक तो बालक के लालन–पालन या जीवन संरक्षण के लिए रातों का जागरण और स्नेह संभाल की अतिरिक्त आवश्यकता होती है। वह अधिकाधिक 'मां' के हिस्से ही आती है क्योंकि वह 'स्नेहमयी मां' है। बराबर का भागीदारी पुरुष पिता रातों को चैन से सो सकता है या कभी बच्चे की रोने की आवाज से डिस्टर्ब हो स्त्राी को उसकी मातृत्व की लापरवाही के लिए अपशब्द भी सुना सकता है। यदि मातृत्व गौरवपूर्ण व्यापार है। तो कुंदनिका कपाडिया यह महत्वपूर्ण सवाल उठाती है कि

फ्मां बनना यदि सचमुच ही गौरव की बात है तो कुंवारी माता या विध्वा के मां बनने पर अथवा बलात्कारी द्वारा जबर्दस्ती मां बना दिए जाने पर स्त्राी को यह गौरव क्यों नहीं मिलता ? उसे कैसी लांछन भरी स्थिति में जीना पड़ता है जबकि उसके लिए जिम्मेदार पुरुष को तो कोई कष्ट नहीं सहना पड़ता।य[1]

धर्म, व्यक्ति का सामाजिक और आत्मिक अस्मिता के साथ जुड़ा ऐसा संकल्प हैं। जिसके बेतुके प्रचार से व्यक्ति की भावनाओं और श्र(ा को पालतु बनाकर मनमाना स्वार्थ साध जा सकता है। पुरुष वर्ग यह खूब जानता है और इसलिए तमाम धर्मों में स्त्राी को अधिक धर्मिक बनाने की नसीहतें दी जाती है। ताकि उनकी तीक्ष्णता, प्रतिवाद क्षमता तथा विचारों की परिपक्वता उसे अंध्–अनुकरण से रोक न ले। स्त्रियां भी अपने को आदर्श स्वरूप मानकर अधिकाधिक जप तप, पूजा अर्चना त्याग सेवा करके अंध् अणुसरण में ही लगा रहती है।

छहेज उत्पीड़न से स्त्रियां आज तक मुक्ति नहीं पा सकी है। पैसा, सत्ता और प्रतिष्ठा के समीकरण वाले इस माज में स्त्राी एक आर्थिक इकाइ नहीं है। इसलिए उसका मूल्य कम है। यह भी एक सामाजिक प्रथा है। कि स्त्राी मायके से ढ़ोकर दहेज लाये और उसके माता पिता उसके घर का पानी तक न पीयें।

ब्लात्कार से पीड़ित स्त्राी को समाज अपने लांघनों, कटुक्तियों तथा व्यंगबानों का ऐसा नरतर देता है। जिससे उसका जीना दूभर हो जाता है। एक बेगुनाह को गुनहगार साबित करने वाला यह सामाजिक कुकृत्य न केवल, वैयक्तिक संदर्भ में वरन् विशेष परिस्थियां बन जाता है।

फअपने वैयक्तिक संदर्भ में बलात्कार महज कामुकता का विषय नहीं है। कभी सचेतन तो कभी अचेतन ढ़ंग से यह नारी को क्रीड़ा बिलास की वस्तु मानने वाली समझ तथा पुरुष की शक्ति का रेखांकन की है। अपने सामुहिक संदर्भ में बलात्कार घोषित रूप से एक राजनीतिक चाल बन जाता हैं। और संगठित आक्रमण के क्रम में वह एक प्रदर्शनीय कृत्य बन जात है। शत्राु समुदाय के स्वायत्त प्रतीक को अपवित्रा करना एक अनष्ठान बन जाता है।य

---

[1]ण *कुंदनिका कपाडिया दीवारों से पारः आकाश, अनुवाद नांदिनी मेहता, साहित्य अकादमी, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1994, पृ. 7*